# 08 स्कूल नेतृत्व पर कुछ विचार

विमला रामचन्द्रन



मैं शोधकर्ताओं के एक समूह की सदस्य रही हूँ। उनके साथ बिताए छह महीने मेरे लिए शिक्षाप्रद अनुभव रहे हैं। यह समूह सरकारी स्कूलों में गुणवत्तापूर्ण और सबको शामिल करने वाली शिक्षा के लिए विकेन्द्रित स्कूल–प्रबन्धन में अच्छी परिपाटियों की खोज कर रहा था। हमें जानकारी मिली कि नागालैण्ड में सामुदायीकरण की पहल एक अच्छा मॉडल है। इसके तहत प्राथमिक स्कूल,स्वास्थ्य और बाल–विकास आदि कार्यक्रमों के दिन–प्रतिदिन का प्रबन्धन ग्राम सभा के रूप में स्थानीय समुदाय को सौंप दिया गया है।

हमारा पड़ाव दीमापुर के निकट का एक स्कूल था जहाँ हमें ग्रामसभा प्रमुख के नेतृत्व में पालकों, स्कूल के प्रधानाध्यापक तथा ग्राम शिक्षा समिति (विलेज एजुकेशन कमेटी, वी.ई.सी.) के सदस्यों तथा कुछ स्थानीय नेताओं के एक समूह से मिलना था। हमें बताया गया कि सामुदायीकरण की प्रक्रिया के ही तहत वी.ई.सी. को स्कूल के संचालन का अधिकार दिया गया है। कमेटी वेतन बाँटती है, शिक्षकों और स्कूल के अन्य कर्मचारियों को अवकाश प्रदान करती है, फर्नीचर और स्टेशनरी मँगवाती है और दीर्घकालिक रिक्त पदों पर वैकल्पिक शिक्षकों की नियुक्ति करती है। उसे 'काम नहीं तो वेतन नहीं' के नियम को लागू करने का अधिकार प्राप्त है और बिना कारण तथा उचित अवकाश आवेदन के स्कूल से अनुपस्थित रहने पर अनुपस्थिति वाले दिनों का वेतन रोकने का अधिकार भी है। कमेटी बच्चों का पूर्ण नामांकन और उनका स्कूल में बना रहना सुनिश्चित करने के लिए प्रधानाध्यापक के साथ काम करती है। कमेटी स्कूल के वित्तीय साधनों का भी प्रबन्धन करती है और आवश्यकता पड़ने पर नगद राशि और सामग्री के रूप में अतिरिक्त संसाधन भी जुटाती है। पर इस बात पर गौर करना महत्वपूर्ण है कि कमेटी स्वयं को शैक्षणिक मामलों में किसी भी प्रकार का नेतृत्व प्रदान करने वाला नहीं मानती। रोचक तथ्य यह था कि वी.ई.सी. के अध्यक्ष और प्रधानाध्यापक मिलकर एक सहयोगी दल की तरह काम करते हैं – वे स्कूल को नेतृत्व देते हैं। नागालैण्ड सरकार का सामुदायीकरण कानून शक्तियों और अधिकारों के विकेन्द्रीकरण के लिए कानूनी ढाँचा प्रदान करता है।

अन्य राज्यों में कुछ सुप्रबन्धित स्कूलों के दौरों से भी प्रकट हुआ कि प्रधानाध्यापक अकेले कुछ करने में समर्थ नहीं होते। वे प्रभावशाली नेतृत्व तभी दे सकते हैं जब (क) उन्हें शिक्षकों को संचालित करने का प्रशासनिक अधिकार हो – जिसमें उनकी नियमितता सुनिश्चित करना, अवकाश प्रदान करना और अतिरिक्त कर्तव्यों का उचित समावेश करना शामिल हो; (ख) उनका स्थानीय वी.ई.सी. या मददगार स्कूल विकास एवं प्रबन्धन समिति (स्कूल डेवलपमैण्ट एण्ड मैनेजमेण्ट कमेटी. एस.डी.एम.सी.) के साथ काम करने में अच्छा तालमेल हो; (ग) उन्हें देख–रेख करने वाली, ऊपर की प्रशासनिक संस्थाओं, जैसे ब्लॉक एवं क्लस्टर संसाधन केन्द्रों और ब्लॉक शिक्षा अधिकारी का सहयोग प्राप्त हो ; (घ) उन्हें धन राशियाँ नियमित रूप से मिलें और बच्चों के लिए निर्धारित सभी प्रोत्साहन राशियाँ एवं सामग्री समय पर प्राप्त हों; तथा (ङ) सबसे महत्वपूर्ण यह है कि आवश्यकता पड़ने पर वे शिक्षकों के लिए शैक्षणिक सहायता सुनिश्चित कर सकें और क्षमता निर्माण की उनकी जरूरतों को तय कर सकें।

स्कूल के स्तर पर नेतृत्व एक जटिल मुद्दा है – एक अत्यन्त समर्पित और सृजनशील प्रधानाध्यापक यह सुनिश्चित करने के लिए बहुत कुछ कर सकता है कि उसका स्कूल एक सुगठित और सुचारु रूप से चलने वाली संस्था हो। वहाँ बच्चों की देखभाल हो तथा उन्हें विकासात्मक वातावरण में पढ़ाया जाए। लेकिन ऐसे नायक बिरले ही होते हैं। अधिकांश प्रधानाध्यापक कहते हैं कि सहायक वातावरण और आवश्यक प्रशासनिक अधिकार के अभाव में वे अधिक कुछ नहीं कर पाते।

> *अधिकांश प्रधानाध्यापक कहते हैं कि सहायक वातावरण और आवश्यक प्रशासनिक अधिकार के अभाव में वे अधिक कुछ नहीं कर पाते।*

हमारे द्वारा लिए गए साक्षात्कारों में अनेक प्रधान शिक्षकों ने कहा कि वे अधिक से अधिक यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि शिक्षक उपस्थित रहें; यह सुनिश्चत करना उनके वश में नहीं है कि शिक्षक पढ़ाएँ भी। उनके लिए यह पक्का कर पाना भी मुमकिन नहीं है कि शिक्षकों को कोई बाहरी जिम्मेदारियाँ सौंपे जाने पर रोक लग सके। उदाहरण के लिए, हमने पाया कि शिक्षा के अधिकार के कानून के पारित होने के पहले राजस्थान में शिक्षकों को जिला प्रशासन द्वारा अतिरिक्त काम दिया गया था, और कुछ को स्व–सहायता समूहों की निगरानी करने के लिए भी कहा गया था। पश्चिम बंगाल में शिक्षक राजनैतिक, दलगत काम में व्यस्त थे। अनेक राज्यों में शिक्षक अनुपस्थित थे और पता चला कि वे अपने निजी व्यवसायों में लगे हुए थे। इसलिए, जब शिक्षक उपस्थित होते थे तो भी स्कूलों में शिक्षण का समय तो सीमित ही रहता था। प्रधानाध्यापकों ने यह भी

कहा कि यदि शिक्षक अपने मोबाइल फोन पर बतियाने पर समय बिताते हैं तो भी सत्ता और संरक्षण के अनौपचारिक तन्त्र के चलते वे कुछ नहीं कर सकते। शिक्षकों के अनुपस्थित रहने और उनमें प्रेरणा तथा प्रोत्साहन न होने की समस्या की जड़ सम्बन्धित राज्य के संचालन–प्रबन्धन की विशिष्ट प्रकृति और स्वभाव में ही होती है। जैसा रश्मि शर्मा कहती हैं, "काम के प्रति शिक्षकों के लगाव को उन संकेतों की पृष्ठभूमि में देखे जाने की जरूरत है जो शिक्षक को उस निरीक्षण के माध्यम से दिए जा रहे थे जिसका सीखने–सिखाने की प्रक्रिया से तनिक भी सम्बन्ध नहीं था, जिसमें अकादमिक संसाधनों का बहुत ही अल्प सहयोग था तथा राजस्थान के मामले में, तबादलों की धमकी थी।'' (शर्मा एवं रामचन्द्रन, 2009)

नागालैण्ड का उदाहरण अपनी ही तरह का अनूठा उदाहरण है। बुनियादी मुद्दा यह है कि विकेन्द्रीकरण और उत्तरोत्तर अधिक सामुदायिक भागीदारी के माध्यम से सर्वांगीण सुधारों की सिफारिश बार–बार की गई है। लेकिन कठोर वास्तविकता यह है कि लोगों की भागीदारी की गुंजाइश का घनिष्ठ सम्बन्ध राज्य के प्रशासनिक और राजनैतिक प्रचलनों से होता है। एक नायक को जिम्मेदारी सौंपते हुए स्कूलों को उसके काम करने में स्वायत्त बनाने का मसला भी बृहत्तर प्रशासनिक और राजनैतिक परिवेश से जुड़ा हुआ है। जहाँ औपचारिक व्यवस्था केन्द्रीकरण को बढ़ावा देती है तथा अनौपचारिक उप–व्यवस्था उसे और प्रबल बना देती है, वहाँ प्रधानाध्यापक तथा समुदाय–आधारित संस्थाएँ हाशिए पर चली जाती हैं, उन्हें दरकिनार कर दिया जाता है। इसी तरह, जहाँ औपचारिक व्यवस्था प्रधानाध्यापक को अधिकार सौंपती है, वहीं अनौपचारिक व्यवस्था उसे कमजोर भी कर सकती है – यह सुनिश्चित करके कि प्रधानाध्यापक का शिक्षकों पर कोई वश न हो। न तो अवकाश प्रदान करने पर, न उपस्थिति सुनिश्चित करने पर और न ही शिक्षण के लिए पर्याप्त समय सुनिश्चित करने पर; और शिक्षक–प्रशिक्षण हेतु निर्णायक अधिकार जैसे आवश्यक पहलुओं के सन्दर्भ में भी यही स्थिति है।

> *एक नायक को जिम्मेदारी सौंपते हुए स्कूलों को उनके काम करने में स्वायत्त बनाने का मसला भी बृहत्तर प्रशासनिक और राजनैतिक परिवेश से जुड़ा हुआ है। जहाँ औपचारिक व्यवस्था केन्द्रीकरण को बढ़ावा देती है तथा अनौपचारिक उप–व्यवस्था उसे और प्रबल बना देती है, वहाँ प्रधानाध्यापक तथा समुदाय–आधारित संस्थाएँ हाशिए पर चली जाती हैं, उन्हें दरकिनार कर दिया जाता है।*

आवश्यकता है कि विभिन्न स्तरों पर स्वायत्तता के साथ काम के अवसर निर्मित करने के लिए समूची शिक्षा व्यवस्था को तैयार किया जाए। स्वतंत्रता–पूर्व के दौर की विरासत के चलते इस व्यवस्था को चलाने वाली ताकत केन्द्रीकरण और नियंत्रण की ताकत रही है। यहाँ तक कि 73वें संविधान संशोधन के द्वारा स्थानीय स्वशासी संस्थाओं को अधिकार सौंपे जाने के बाद भी स्कूल एक संस्था के रूप में पंचायत के अधिकार–क्षेत्र से बाहर ही है। शिक्षक और प्रधानाध्यापक को अभी भी ऐसे सरकारी कर्मचारियों की तरह देखा जाता है जो जिला और राज्य प्रशासन में अपने आला अधिकारियों के प्रति जवाबदेह हैं। पूरे पदानुक्रम में उनकी एक निश्चित, निर्धारित जगह और हैसियत है। अनेक अध्ययनों ने दर्शाया है, स्कूल के संचालन के तौर–तरीके पर उनका लगभग कोई वश नहीं चलता। स्कूल के लगभग सभी पहलू उच्च स्तरों पर निर्धारित होते हैं – जिससे प्रधानाध्यापकों और उनके शिक्षकों के लिए सरकारी आदेशों को लागू करने की भूमिका ही शेष रह जाती है।

### क्या शिक्षा का अधिकार कानून (आर.टी.ई.) जमीनी हकीकत में बदलाव ला सकता है?

शिक्षा का यह नया संवैधानिक अधिकार स्कूल चलाए जाने के मौजूदा तरीके में दूरगामी परिवर्तन प्रस्तावित करता है। पहला, यह कानून परिभाषित करता है कि स्कूल क्या है। यह विभिन्न स्तरों पर उपयुक्त अधिकारी का भी स्पष्ट उल्लेख करता है। स्थानीय प्राधिकरण (नगर निगम/पालिका, जिला परिषद, नगर परिषद और पंचायत) को स्कूल की उपलब्धता सुनिश्चित करना है, सभी बच्चों को स्कूल में भरती करवाना है, अपने क्षेत्र के सभी बच्चों के रिकॉर्ड रखना है, स्थानीय कैलेण्डर भी तय करना है और आर.टी.ई. कानून के प्रावधान के अनुकूल शिक्षकों की पर्याप्त संख्या को सुनिश्चित करना है। दिलचस्प बात यह है कि गुणवत्ता सुनिश्चित करने का जिम्मा स्थानीय प्राधिकरण पर छोड़ दिया गया है, पर बच्चों को प्रवेश देने, आयु के अनुसार उचित प्रवेश सुनिश्चित करने, विशेष प्रशिक्षण आयोजित करने, किसी भी प्रकार के शारीरिक दण्ड न देने और बच्चों को सीखने का सौहार्दपूर्ण वातावरण प्रदान करने में आर.टी.ई. कानून के मानदण्डों का पालन करने की अपेक्षा स्वयं स्कूल से की गई है। इसके बाद यह कानून एस.डी.एम.सी. की जिम्मेदारियों का उल्लेख करता है – और इसका प्रमुख कार्य स्कूल के विकास की योजना तैयार करना है।

आर.टी.ई. कानून स्कूल स्तर पर नेतृत्व को बढ़ावा देने का प्रयास करता है। यह कोशिश एस.डी.एम.सी. के माध्यम से होगी जिसे स्कूल की विकास योजना तैयार करने की जिम्मेदारी सौंपी गई है। इस विकास योजना में स्कूल की सभी जरूरतें प्रतिबिम्बित होनी चाहिए – मूलभूत ढाँचा, शिक्षक, सुविधाएँ, पुस्तकालय, खेल का मैदान, पुस्तकें, मध्यान्ह भोजन, स्वच्छता और पानी का समुचित

ध्यान रखा जाना चाहिए। रोचक बात है कि शिक्षकों की नियुक्ति अभी भी सरकार के द्वारा ही होगी, उन्हें एस.डी.एम.सी. के दायरे में नहीं लाया गया है।

**अभी भी बहुत से प्रश्न अनुत्तरित हैं।**

- स्कूल स्तर का नेतृत्व कौन प्रदान करेगाः एस.डी.एम.सी. का अध्यक्ष या प्रधानाध्यापक?
- क्या एस.डी.एम.सी. एक नियुक्त की गई समिति होगी या इसे चुना जाएगा?
- यदि इसे नियुक्त किया जाएगा तो इसके सदस्यों को नामांकित करने का अधिकार किसे होगा?क्या उसमें पंचायत का दखल होगा? या कि ब्लॉक या क्लस्टर स्तर का शिक्षा प्रशासन उन्हें नामांकित करेगा?
- क्या प्रधानाध्यापक और शिक्षक एस.डी.एम.सी. के अधिकार क्षेत्र में आएँगे या वे उससे स्वतंत्र रहेंगे?
- शिक्षक किसके प्रति जवाबदेह होंगे? प्रधानाध्यापक के? एस.डी.एम.सी. के? स्थानीय प्रशासन के?

अन्ततः स्कूल नेतृत्व का प्रश्न जटिल रूप से बृहद व्यवस्था से जुड़ा है, उसे इससे अलग नहीं किया जा सकता। कई राज्यों का दौरा करने और शिक्षकों से बात करने के बाद मेरे मन में और भी अधिक प्रश्न खड़े हो गए हैं। शिक्षा व्यवस्था नेतृत्व प्रदान करने के लिए प्रधानाध्यापक की ओर नहीं देखती – वास्तव में जिन प्रधानाध्यापकों से हमने बात की, उनमें से अधिकांश ने कहा कि स्कूल के संचालन के लिए उन्हें कमोबेश कोई विशेष प्रशिक्षण नहीं मिला। आर.टी.ई. कानून और प्रशासक स्कूलों में नेतृत्व प्रदान करने के लिए एस.डी.एम.सी. की ओर देखते हैं। लेकिन लगभग सभी राज्यों में एस.डी.एम.सी. के अध्यक्ष और उसके अधिकांश सदस्य स्वयं अपने बच्चों को स्थानीय सरकारी स्कूल में नहीं भेजते। नागालैण्ड में भी यही स्थिति थी। समुदाय में शक्ति सम्बन्धों को देखें और इस तथ्य पर गौर करें कि सरकारी स्कूल बहुत गरीब लोगों के लिए ही रह गए हैं, तो हम कह सकते हैं कि स्कूलों में प्रदान की जा रही शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने में एस.डी.एम.सी. के नेतृत्व का कोई दाँव नहीं लगा होगा, कोई वास्तविक दिलचस्पी नहीं होगी। ज्यादा से ज्यादा वे शायद इसके बुनियादी ढाँचे और सुविधाओं को थोड़ी अधिक पारदर्शिता से संचालित करने का प्रयास ही करें।

नेतृत्व का मुद्दा विकेन्द्रीकरण और अधिकारों तथा शक्तियों के वितरण की व्यापक बहस में कहीं खो गया है। आर.टी.ई. कानून भी इस बारे में स्पष्ट नहीं है। केवल एन.सी.एफ. 2005 ने कार्यकारी माध्यम की तरह शिक्षक की भूमिका और उसकी स्वायत्तता के महत्व को रेखांकित किया था – लेकिन तब से इसके बारे में हमने कुछ अधिक चर्चा नहीं सुनी है। यह हमारे स्कूलों के लिए या उनमें नेतृत्व के लिए शुभ संकेत नहीं है।

---

**विमला रामचन्द्रन** शिक्षा तथा सशक्तीकरण पर काम कर रहे शोधकर्ताओं व प्रयोगकर्ताओं के एक समूह एजुकेशनल रिसोर्स यूनिट की निदेशक हैं। वे भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के शिक्षा विभाग के अन्तर्गत महिलाओं की शिक्षा के लिए बने कार्यक्रम महिला समाख्या (1988–1993) तैयार करने वालों में से एक तथा उसकी पहली राष्ट्रीय परियोजना निदेशक थीं। वे महिलाओं के एक स्वास्थ्य नेटवर्क, हैल्थवॉच, की संस्थापक हैं और 1994 से 2004 तक वे उसकी ट्रस्टी (प्रबन्ध न्यासी) भी रहीं हैं। प्राथमिक शिक्षा, लैंगिक मुद्दों और महिला सशक्तीकरण पर उनके कई लेख प्रकाशित हो चुके हैं। उनसे erudelhi@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।